दैनिक जागरण

Date:21-09-23

पारदर्शिता अपनाए संघ लोक सेवा आयोग

डा. विजय अग्रवाल, (लेखक पूर्व सिविल सेवक हैं)

इन दिनों संघ लोक सेवा आयोग यानी यूपीएससी की मुख्य परीक्षाएं हो रही हैं। इन परीक्षाओं का परिणाम नवंबर या दिसंबर में आएगा। इसके बाद साक्षात्कार होगा और फिर सफल अभ्यर्थियों के नाम सामने आएंगे। इस परीक्षा में सफल होने वाले अभ्यर्थियों को लेकर कार्मिक, लोक शिकायत, कानून और न्याय संबंधी संसद की स्थायी समिति ने पिछले दिनों अपनी रिपोर्ट में कहा कि सिविल सेवाओं में 70 प्रतिशत से अधिक भर्तियां तकनीकी और मेडिकल बैकग्राउंड से होती हैं । संसदीय समिति की यह रिपोर्ट अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, युवाओं के एक वर्ग के इस आरोप को जायज ठहरा रही है कि सिविल सेवा परीक्षा में सीसैट यानी सिविल सर्विसेज एप्टीट्यूड टेस्ट का पेपर उनके साथ भेदभाव कर रहा है। इस समिति ने सिविल सेवा परीक्षा की पद्धति में कई सुधारों की सिफारिश की है, लेकिन उनमें दो विशेष रूप से गौर करने योग्य हैं। समिति ने इस पर गहरी चिंता व्यक्त की है कि सिविल सेवा में आने वाले युवाओं में इंजीनियरों और डाक्टरों की संख्या अधिक है। इसके चलते अन्य पेशे प्रभावित हो रहे हैं। आंकड़े इसकी पुष्टि करते हैं कि 2012 के बाद से इस सेवा में इंजीनियरों और डाक्टरों का प्रतिशत लगातार बढ़ता गया है। इसे देखते हुए संसदीय समिति ने संघ लोक सेवा आयोग को विशेषज्ञों की एक ऐसी समिति बनाने को कहा है, जो इसे देखे कि सिविल सेवा परीक्षा में सभी परीक्षार्थियों को समान अवसर मिल पा रहे हैं या नहीं? संसदीय समिति के ये दोनों सुझाव गहरे रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। साथ ही सीधे शब्दों में न सही, यह कहते हुए जान पड़ रहे हैं कि सिविल सेवा परीक्षा पद्धति में कुछ विसंगतियां हैं।

संघ लोक सेवा आयोग 'सबके लिए समान -अवसर' के मूलभूत लोकतांत्रिक एवं न्यायपूर्ण नीति का पालन नहीं कर रहा है। निगवेकर समिति ने तो 2013 में ही साफ तौर पर सीसैट के पेपर को भेदभावपूर्ण बता दिया था, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि आयोग ने इतने गंभीर आरोप पर कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि इसके विपरीत 2023 तक -आते-आते उस भेदभाव को चरम तक पहुंचा दिया। सिविल सेवा परीक्षा में टेक्नोक्रेट का दबदबा बढ़ने का मूल कारण स्वयं की उनकी योग्यता से -अधिक उस सीसैट प्रश्नपत्र का लागू होना रहा, जिसे प्रारंभिक परीक्षा के ही स्तर पर 2011 में शुरू किया गया था। यह प्रश्नपत्र पूरी तरह गणित के विद्यार्थियों के पक्ष में है। साफ है कि मानविकी विषयों के विद्यार्थी इस आरंभिक स्तर पर ही दौड़ से बाहर हो जाते हैं। अच्छा होता कि परीक्षा में सफल होने वाले परीक्षार्थियों की अलग-अलग पृष्ठभूमि पर तरह-तरह के आंकड़े जारी करने वाला संघ लोक सेवा आयोग इसके भी आंकड़े जारी करता कि प्रारंभिक परीक्षा में बैठने वाले कितने प्रतिशत परीक्षार्थी किन-किन संकायों से होते हैं? ये आंकड़े इस भेदभावपूर्ण तथ्य को सतह पर ला पाते कि प्रारंभिक परीक्षा में बैठने वाले लगभग 75 प्रतिशत युवा कला के तथा 25 प्रतिशत युवा विज्ञान के होते

हैं। मुख्य परीक्षा में आंकड़ों का यह स्वरूप इसके ठीक विपरीत हो जाता है। इसका मुख्य श्रेय जाता है - सीसैट के पेपर को।

सीसैट पेपर में कुल 80 प्रश्न होते हैं। इनमें से 25 से 28 प्रश्न औसतन हर साल बोधगम्यता यानी कांप्रिहेंशन के होते हैं। हास्यास्पद यह है कि हिंदी में बोधगम्यता के अंतर्गत जो प्रश्न दिए जाते हैं, वे मूल हिंदी के न होकर अंग्रेजी से अनूदित होते हैं। अनुवाद भी हिंदी और अंग्रेजी भाषा के जानकार से नहीं, गूगल द्वारा कराया जाता है | हिंदी के किसी परिच्छेद को हिंदी के बजाय अंग्रेजी में समझना आसान होता है, बशर्ते थोड़ी-बहुत अंग्रेजी आती हो । सोचकर देखिए कि आप भाषा के 'बोध' की क्षमता का परीक्षण कर रहे हैं, भाषा के अर्थ- ज्ञान का नहीं और भाषा के बोध का यह परीक्षण किया जा रहा है - अनुवाद की भाषा से। क्या यह सही और न्यायपूर्ण लगता है? क्या अनूदित शब्दों में शब्दों के अपने संस्कार एवं परिवेश उपस्थित रहते हैं ? उदाहरण के तौर पर 'जनेऊ' को अंग्रेजी में कैसे बताएंगे? फिल्म 'हम आपके हैं कौन' का अंग्रेजी अनुवाद कैसे किया जाएगा, लेकिन संघ लोक सेवा आयोग कुछ ऐसा ही कर रहा है। क्या आयोग हिंदी एवं अन्य सभी भारतीय भाषाओं के परीक्षार्थियों की इस दुखती रग का कुछ उपचार करेगा ? यह भी भेदभाव का एक ज्वलंत नमूना है।

यूपीएससी से अनुरोध है कि वह देश को यह भी बताए कि ऐसे विद्यार्थी कितने प्रतिशत होते हैं, जो सीसैट को क्वालीफाई नहीं कर पाते ? साथ ही यह भी जानकारी मिलनी चाहिए कि क्वालीफाई न कर पाने वाले इन परीक्षार्थियों की शिक्षा की पृष्ठभूमि क्या होती है ? इससे परीक्षा पद्धति अधिक पारदर्शी हो सकेगी। उसमें क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए, इसके लिए ठोस एवं व्यावहारिक तथ्य मिल सकेंगे। इसके साथ ही यूपीएससी के प्रति बढ़ रहे अविश्वास की भावना पर भी रोक लग सकेगी। संघ लोक सेवा आयोग को संसदीय समिति की उस सिफारिश पर भी गौर करना चाहिए, जिसमें उसने कहा है कि परीक्षार्थियों से प्राप्त फीस तथा उसके व्यय के बारे में पारदर्शिता दिखाई जाए। यह सिफारिश इसकी ओर संकेत करती है कि समिति के सदस्य यूपीएससी की पारदर्शिता की नीति से संतुष्ट नहीं। परीक्षार्थियों द्वारा अपनी किसी मांग के लिए आंदोलन करने तथा आयोग पर अविश्वास करके आंदोलन करने, इन दोनों में बहुत फर्क है। याद नहीं आ रहा कि इससे पहले कभी इस संस्था पर पक्षपात का इतना अधिक गंभीर आरोप लगाया गया हो, किंतु आयोग मौन है। उसकी ओर से कम से कम विचार करने का आश्वासन तो दिया ही जा सकता है।

Date:21-09-23

कनाडा सरकार की शरारत

संपादकीय

कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन टूडो ने अवैध तरीके से अपने देश पहुंचे खालिस्तानी आतंकी हरदीप सिंह निज्जर की हत्या में भारतीय एजेंट का हाथ होने की बात कहकर किस तरह घोर राजनीतिक अपरिपक्वता का परिचय दिया, इसका पता इससे चलता है कि उन्होंने यह कहा कि इसके पुख्ता आरोप मिले हैं। यह शायद पहली बार है, जब किसी देश के प्रधानमंत्री ने किसी अन्य देश को कठघरे में खड़ा करने के लिए पुख्ता आरोपों की बात की हो, न कि पुख्ता प्रमाणों की। कनाडा के पास इसके कोई साक्ष्य नहीं कि निज्जर की हत्या में भारत का हाथ है, यह इससे भी साफ होता है कि उनकी

विदेश मंत्री ने कहा कि यदि आरोप सही पाए गए तो फिर मामला गंभीर हो जाएगा। इसका अर्थ है कि केवल कथित आरोपों के आधार पर कनाडा ने भारत को निशाने पर ले लिया और एक राजनयिक को भी निष्कासित कर दिया। भारत ने कनाडा सरकार के आरोपों को न केवल बेतुका बताया, बल्कि उसके भी एक राजनयिक को जाने को कह दिया। इसके बाद भारत ने अत्यंत कठोर शब्दों में कनाडा में रह रहे भारतीयों और छात्रों को सतर्कता बरतने की एडवाइजरी जारी की। वैसे तो ऐसी ही एडवाइजरी कनाडा ने भारत को लेकर भी जारी की है, लेकिन भारत ने यह भी संकेत किया है कि कनाडा में राजनीति प्रेरित नफरत और हिंसा को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसका मतलब है कि जस्टिन ट्रूडो सरकार अतिवाद को संरक्षण दे रही है। यह एक सच्चाई भी है।

खालिस्तानी अतिवादियों और यहां तक कि आतंकियों के प्रति भी हद से ज्यादा नरमी बरत रहे हैं। कनाडा में दर्जनों खालिस्तानी आतंकी शरण लिए हुए हैं। इनमें से कई भारत में वांछित हैं, लेकिन कनाडा सरकार उन्हें सौंपने से इन्कार कर रही है। आतंकी निज्जर भी भारत में वांछित था और उस पर भारत सरकार ने इनाम भी घोषित कर रखा था। वैसे तो जस्टिन ट्रूडो पहले से ही वोट बैंक की राजनीति के चलते खालिस्तानियों को संरक्षण देते रहे हैं, लेकिन जबसे उनकी अल्पमत सरकार को एनडीपी नामक दल का साथ लेना पड़ा है, तबसे वह खालिस्तानी तत्वों पर कुछ अधिक ही मेहरबान हैं। इसका कारण यह है कि एनडीपी का प्रमुख खालिस्तान का कट्टर समर्थक जगमीत सिंह धालीवाल है। राजनीतिक लाभ हासिल करने और अपनी गिरती लोकप्रियता को थामने के लिए जस्टिन ट्रूडो खालिस्तानियों को संरक्षण देकर न केवल भारत से संबंध बिगाड़ रहे हैं, बल्कि कनाडा को चरमपंथियों का गढ़ भी बना रहे हैं। वह इससे अनजान नहीं कि कनाडा में रह रहे खालिस्तानी आतंकियों ने ही 1985 में एअर इंडिया के विमान को बम विस्फोट से उड़ा दिया था। इस घटना में 329 लोग मारे गए थे। जस्टिन ट्रूडो के संरक्षण में कनाडा में जो कुछ हो रहा है, उससे भारत को सतर्क रहना होगा, क्योंकि वहां की घटनाओं का असर पंजाब में पड़ सकता है।

दैनिक भास्कर

Date:21-09-23

गवर्नेंस में निजीकरण का नया स्वरूप कितना सही?

संपादकीय

खबर है कि टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया (ट्राई) के चेयरपर्सन के पद पर 30 साल के अनुभव वाले कॉर्पोरेट सीईओ या निजी क्षेत्र में मैनेजमेंट में वरिष्ठ पदों पर काम करने वाले लोगों को नियुक्त किया जाएगा और इसके लिए ट्राई अधिनियम, 1997 के सेक्शन 4 में संशोधन का बिल भी लाया जाएगा। इसके पहले इसी वर्ष सेबी के अध्यक्ष के रूप में एक निजी क्षेत्र की एग्जीक्यूटिव को लाया गया था। डिजिटल पर्सनल डाटा प्रोटेक्शन एक्ट, 2023 में भी संशोधन करके निजी क्षेत्र से लोगों को लाने की योजना है। कल तक जो सीईओ निजी कंपनियां संभालते थे, उन्हें ट्राई, डाटा प्रोटेक्शन रेगुलेटर या सेबी का अध्यक्ष बनाने से गवर्नेंस में जनता के विश्वास को क्षति पहुंचेगी। किसी निजी क्षेत्र के

एग्जीक्यूटिव के जरिए राजकाज का संचालन खतरनाक हो सकता है। इसके पहले भी प्रमुख इंफ्रास्ट्रक्चर क्षेत्र जैसे एयरपोर्ट, सीपोर्ट, हाइवेज और रेलवे में उद्योगपतियों के आने से सरकार की नीति पर प्रश्नचिह्न खड़े हो चुके हैं। 'लेटरल एंट्री' (गैर-अफसरशाह निजी क्षेत्र से लोगों का प्रशासन में आना) के नतीजे पूर्व में भी बहुत उत्साहजनक नहीं रहे। अफसर कम से कम इस बात से डरते हैं कि गलत किया तो पेंशन रुक सकती है, लेकिन वर्षों तक करोड़ों की तनख्वाह पाए सीईओ के लिए कोई बाध्यता नहीं होगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:21-09-23

वृद्धि के लिए बचत

संपादकीय

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने घरेलू वित्तीय बचत के जो आंकड़े इस सप्ताह पेश किए हैं, उन्होंने अर्थशास्त्र के विद्वानों को चौंका दिया है और इनका मध्यम अवधि की वृद्धि पर गहरा असर हो सकता है। आंकड़ों से पता चलता है कि विशुद्ध घरेलू वित्तीय बचत 2022-23 में सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी के 5.1 फीसदी के बराबर ही रह गई, जो कई दशकों में इसका सबसे कम स्तर है। पिछले वर्ष यह 7.2 फीसदी थी। वित्तीय बचत में ऐसी गिरावट की कई वजह हो सकती हैं। चूंकि बचत में कुल मिलाकर गिरावट हुई है इसलिए संभव है कि महामारी के दौरान जिन परिवारों की आय को झटका लगा था उनकी आय पूरी तरह पटरी पर नहीं लौट पाई हो। इससिए हो सकता है कि अर्थव्यवस्था में सुधार कंपनियों के मुनाफे की वजह से दिखा हो, जिसमें पिछली कई तिमाहियों से अच्छी बढ़त रही है।

यह भी संभव है कि निरंतर बढ़ती महंगाई के कारण परिवार बचत नहीं कर पाए हों। खुदरा मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फीति की दर महामारी के बाद से ही ऊंचे स्तर पर रही है। रिजर्व बैंक भी 2022 में तय मुद्रास्फीतिक लक्ष्य हासिल करने में नाकाम रहा है और इस बारे में उसे केंद्र सरकार के सामने सफाई भी देनी पड़ी। मुद्रास्फीति की दर एक बार फिर केंद्रीय बैंक के तय दायरे से ऊपर है। परिवारों की वित्तीय देनदारियां भी 2022-23 में जीडीपी की 5.8 फीसदी हो गईं, जो 2021-22 में 3.8 फीसदी ही थीं। संभव है कि लोगों ने उपभोग के लिए उधारी ली हो क्योंकि उनकी आय पर्याप्त नहीं थी। यह भी संभव है कि लोगों ने घर आदि अचल संपत्ति खरीदने के लिए भी राशि व्यय की हो और उधार ली हो। ऋण उठान के आंकड़े भी यही संकेत देते हैं कि लोगों की उधार लेने की रफ्तार बढ़ी है। घरेलू कर्ज 2021-22 के 36.9 फीसदी से बढ़कर 2022-23 में जीडीपी के 37.6 फीसदी के बराबर हो गया। अगर खपत मांग को भी ऋण से सहारा मिल रहा है, जो कुछ हद तक लग भी रहा है तो घरेलू हिसाब-किताब दुरुस्त करने पर भविष्य में मांग कमजोर रहेगी।

कमजोर मांग का अर्थ होगा निकट अवधि में कमजोर आर्थिक वृद्धि। उम्मीद है कि निजी निवेश में सुधार से वृद्धि को मदद मिलेगी। मगर निजी खपत में सतत वृद्धि के अभाव में कंपनियां भी शायद क्षमता विस्तार की इच्छुक न रहें। चूंकि वैश्विक मांग भी कमजोर रहने का अनुमान है, इसलिए कंपनियां नया बड़ा निवेश भी करना नहीं चाहेंगी। ऐसे में वृहद आर्थिक नजरिये से अगर निजी खपत, निवेश और निर्यात कमजोर रहे तो इसकी भरपाई सरकार को करनी होगी। पिछले कुछ समय से उच्च पूंजीगत व्यय के माध्यम से सरकार यही करती आ रही है। किंतु तमाम राजकोषीय बाधाओं को देखते हुए शायद सरकार ज्यादा लंबे समय तक ऐसा न कर पाए।

घरेलू वित्तीय बचत में कमी ब्याज दरों और निवेश को भी प्रभावित कर सकती है। यह बात ध्यान देने लायक है कि सरकारी उधारी घरेलू क्षेत्र से होने वाली वित्तीय बचत की आपूर्ति की तुलना में अधिक है। अगर कॉरपोरेट क्षेत्र निवेश के लिए अधिक ऋण लेना शुरू कर देता है तो ब्याज दरें बढ़ेंगी। कम घरेलू बचत के साथ निवेश में इजाफे का अर्थ होगा भारत को पूंजी आयात की आवश्यकता। ऐसा करना पड़ा तो अलग तरह की दिक्कतें आएंगी। ऐसे में यही प्रतीत होता है कि समग्र उत्पादन जहां महामारी के झटके से उबर आया है वहीं सुधार में उतारचढ़ाव रहा है और इसे दोबारा संतुलित करने में समय लगेगा। इसलिए यह नीतिगत चुनौती बनी हुई है कि जिस समय वैश्विक अर्थव्यवस्था में वृद्धि धीमी रहने का अनुमान है और राजकोषीय बाधाओं में बढ़ोतरी हो सकती है, उस समय आर्थिक वृद्धि कैसे हासिल की जाए।

जनसत्ता

Date:21-09-23

सख्ती का संदेश

संपादकीय

खालिस्तानी चरमपंथ के मसले पर भारत और कनाडा के संबंध अब तक के सबसे निचले स्तर पर पहुंच गए हैं। भारत ने परामर्श जारी कर अपने नागरिकों को कनाडा के कुछ क्षेत्रों में यात्रा करने से बचने और अतिरिक्त सावधानी बरतने की सलाह दी है। दरअसल, कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो ने बीते सोमवार को संसद के आपातकालीन सत्र में चरमपंथी खालिस्तानी टाइगर फोर्स के प्रमुख रहे हरदीप सिंह निज्जर की हत्या में भारतीय एजेंटों का हाथ होने का आरोप लगाया और एक वरिष्ठ भारतीय राजनयिक को निष्कासित कर दिया। मामले को अंतरराष्ट्रीय मंच पर ले जाते हुए उन्होंने अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और फ्रांस के समक्ष भी यह मुद्दा उठाया। सिर्फ आशंका के आधार पर कनाडा के इस कदम पर भारत का एतराज स्वाभाविक है। यही वजह है कि भारत ने भी कनाडा के शीर्ष राजनयिक को निष्कासित कर पांच दिन में देश छोड़ने का फरमान सुना कर एक कड़ा संदेश दिया है। गौरतलब है कि भारत चरमपंथी तत्वों पर नरमी को लेकर कनाडा को कई बार चेतावनी दे चुका है, लेकिन उसका रवैया नहीं बदला। कनाडा में बैठे खालिस्तान समर्थक तत्त्व लगातार भारत विरोधी गतिविधियों को अंजाम देते रहे हैं और वहां की सरकार उनके प्रति यह कहकर नरम रुख अख्तियार करती रही है कि वह हर नागरिक की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करेगी।

नतीजतन, आज वहां दर्जन भर से ज्यादा खालिस्तान समर्थक और भारत विरोधी संगठन सक्रिय हैं। निज्जर ऐसे ही एक संगठन में प्रमुख हैसियत रखता था, जो पंजाब को भारत से अलग स्वतंत्र खालिस्तान बनाने की मांग को लेकर कनाडा समेत कई देशों में जनमत संग्रह कराता है। गौरतलब है कि हरदीप सिंह निज्जर की बीते जून माह में कनाड़ा के सरे शहर में दो अज्ञात हमलावरों ने गोली मार कर हत्या कर दी थी। इसके बाद वहां न केवल भारतीय राजनयिकों, भारतवंशियों पर हमले तेज हुए, बल्कि मंदिरों में भी तोड़फोड़ की गई। कनाडा सरकार इन घटनाओं पर न केवल चुप्पी साधे रही, बल्कि उसने भारत की शिकायत पर इसे अभिव्यक्ति की आजादी बताकर परोक्ष रूप से खालिस्तानी तत्वों को खुली छूट ही दी। भारत लंबे अरसे से इन घटनाओं और कनाडा सरकार के रवैए पर सख्त रुख अपनाने से बचता आ रहा था, लेकिन हाल ही में संपन्न 20 शिखर सम्मेलन के दौरान दिल्ली से खरी-खरी सुनने के बाद स्वदेश लौटे टूडो ने जैसे ही अक्तूबर में प्रस्तावित एक व्यापार समझौते को रद्द करने का एलान किया तो भारत ने भी मुक्त व्यापार समझौते को लेकर कनाडा के साथ चल रही बातचीत रोक कर कड़ा संदेश दिया।

जाहिर है, कनाडा में यह मामला सीधे राजनीति से जुड़ा है। सिख फार जस्टिस जैसे संगठन टूडो की लिबरल पार्टी को समर्थन देते हैं। टूडो के मंत्रिमंडल में भी कई खालिस्तान समर्थक मंत्री हैं। यही वजह है कि टूडो भारत की मांग को अनसुना करते आ रहे हैं। कनाडा में लगभग सोलह लाख भारतवंशी रहते हैं। दोनों देशों के कारोबारी सामरिक रिश्ते आमतौर पर सौहार्दपूर्ण रहे हैं, लेकिन खालिस्तानी चरमपंथ के उभार और कनाडाई राजनीतिक नेतृत्व से उन्हें मिली शह के कारण अब ये संबंध खटास की गहरी खाई की ओर बढ़ते दिख रहे हैं। कनाडा भारत का दसवां सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार भी है, लेकिन उसके साथ यह साझेदारी अपनी संप्रभुता, स्वतंत्रता एवं आंतरिक सुरक्षा की कीमत पर जारी नहीं रखी जा सकती। कनाडा को यह समझने की जरूरत है कि खालिस्तान समर्थक चरमपंथ की वजह से भारत में कैसी जटिलताएं खड़ी हो रही हैं और यह मसला उसके लिए कितना संवेदनशील है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:21-09-23

नुकसान में कनाडा

संपादकीय

कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रडो ने भारत से अपने संबंध बिगाड़ लिए हैं। इस बुरी तरह कि उनके पद पर रहते इसमें सुधार की संभावना नहीं हैं। यह कोरी तोहमत या भारत की तरफदारी नहीं है, बल्कि तथ्यात्मक निष्कर्ष हैं। इसलिए कि टूडो ने खालिस्तानी आतंकवादी हरदीप सिंह निज्जर की कनाडा हत्या का मामला उठाते हुए बिना किसी सबूत के ही भारत को दोषी ठहराया। उन्होंने भारतीय राजनयिक को देश छोड़ने का फरमान भी जारी किया। यह स्थिति तब है, जब भारत और कनाडा दोनों देश मित्र हैं, परस्पर पाकिस्तान नहीं हैं। लेकिन टूडो कनाडा को शायद दूसरा पाकिस्तान बनाना चाहते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो वे खालिस्तान समर्थक दलों की खुलेआम हिमायत नहीं करते, उनकी भारत विरोधी, अलगाववादी- उग्रवादी गतिविधियों को अंजाम देने, इनकी फंडिंग करने और हत्याओं का सिलसिला चलाने के अपराधों के

प्रति अपनी आंखें नहीं मूंदे होते। यह स्थिति तब है, जबकि वे विभिन्न वैश्विक एवं समूह केंद्रित अंतरराष्ट्रीय मंचों पर एक दूसरे देश की सम्प्रभुता को चुनौती देने वाली गतिविधियों पर अंकुश लगाने के प्रस्तावों पर हस्ताक्षरकर्ता रहे हैं। अभी-अभी भारत में हुए जी-20 के नई दिल्ली लीडर्स डेक्लरेशन पर भी दस्तखत कर कनाडा लौटे हैं। इनके बावजूद वे भारत की खालिस्तानी उपद्रवों को अभिव्यक्ति की आजादी कह कर तवज्जो नहीं देते रहे हैं। वे भूल रहे हैं कि हर आज़ादी की एक अनिवार्य हद होती है उसे खूनी दरारें पैदा करने की इजाजत नहीं है। जिस निज्जर पर वे भारत से बागी होने का जोखिम ले रहे हैं, जो अनेक आतंकवादी - उग्रवादी मामलों समेत 10 हत्याओं में कई एजेंसियों को वांछित था। इंटरपोल ने रेड कॉर्नर नोटिस जारी किए हुए था। ऐसों के प्रति उनका प्रेम पाकिस्तान होने की जमीन तैयार करना ही हुआ न? दरअसल, वे ऐसा करते दिख रहे हैं तो इसकी तात्कालिक वजह उनकी सरकार की अल्पमतता है, जिसकी न्यू डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ खालिस्तान के समर्थन की विवशता है। यह कनाडा में दो फीसद सिख आबादी के वोटों से भी जुड़ी है। दूसरा कारण, उनके इसी रवैये पर जी-20 सम्मेलन में भारत से वह भाव न मिलना भी है। ट्रूडो भारत पर बेबुनियादी आरोप लगाकर अपनी सरकार तो बचा लेंगे-पर संबंध बिगाड़कर, साख गंवाकर भारत की उन्हीं की शैली में दी गई प्रतिक्रिया देखते हुए यह भारी कीमत है । इस मसले पर नई दिल्ली को 'सहयोग' की नसीहत देने वालों को ट्रूडो सरकार के सामने पूर्व में रखे गए तथ्यों को भी देखना चाहिए।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:21-09-23

कनाडा से निराशा

संपादकीय

भारत और कनाडा के बीच पैदा ताजा तनाव का असर विभिन्न मंचों पर दिखने लगा है और यह दोनों ही लोकतांत्रिक देशों के लिए दुखद और अफसोसजनक है। कनाडा शुरू से ही भारतीयों का एक प्रिय ठिकाना रहा है, पर अगर वह अब आतंकियों या अलगाववादियों का ठिकाना बनना चाहता है, तो वह अपने लिए हास्यास्पद स्थिति ही पैदा करेगा। कनाडा की वर्तमान सरकार ने जिस तरह से नासमझी में जल्दबाजी दिखाई है, उसकी निंदा स्वयं कनाडा के ही संजीदा विद्वान व नेता कर रहे हैं। भारतवंशी कनाडाई नेता उज्ज्वल दोसांझ को सब जानते हैं, वह भी पंजाबी हैं, उन्होंने तो यहां तक सलाह दे डाली है कि अगर कनाडा सरकार को इतनी ही परवाह है, तो वह अपने यहां ही एक खालिस्तान बना दे। सिर्फ सियासी मजबूरी की वजह से मौजूदा कनाडा सरकार अगर भारत विरोधियों की पक्षधर बन गई है, तो यकीन मानिए, उसने अपने ही देश को मुश्किल में डाल दिया है।

कनाडा निवासी नामजद आतंकी हरदीप सिंह निज्जर की हत्या में किसी भारतीय एजेंसी की संलिप्तता है, तो कनाडा को इसके ठोस प्रमाण पेश करने चाहिए। एक वांछित आतंकी के प्रति कनाडा सरकार का लगाव बेहद निंदनीय है। यह भारत की संप्रभुता पर सीधे हमला है। भारत को तोड़ने का इरादा रखने वालों के प्रति किसी देश को भला क्यों हमदर्दी होनी चाहिए? ऐसे में, कनाडा के प्रति भारत की शुरुआती आक्रामकता आवश्यक व उचित है। कनाडा को कूटनीतिक स्तर पर जैसे को तैसा स्वरूप में करारा जवाब मिलना ही चाहिए। कनाडा में 2,30,000 भारतीय छात्र और 7,00,000 अनिवासी भारतीय रहते हैं। इतने लोगों को किसी भी तरह की परेशानी से बचाना भारत सरकार की जिम्मेदारी है। भारत सरकार ने उचित ही अपने लोगों की सुरक्षा के लिए जरूरी दिशा-निर्देश जारी किए हैं, और आगे भी स्थितियों पर चौकस निगाह रखनी चाहिए। यह बड़े अफसोस की बात है कि भारत-कनाडा तनाव का असर कूटनीतिक मंचों पर ही नहीं, भारतीय शेयर बाजार पर भी दिखा है।

कनाडा के कुछ निकट मित्र देश भी भारत को आदतन नसीहत देने की मुद्रा में हैं। ऐसे देशों को अपने गिरेबान में झांकना चाहिए। पहली बात, भारत को बगैर सुबूत कठघरे में खड़ा करना उचित नहीं है। दूसरी बात, किसी भी देश की संप्रभुता में भारत ने कभी हस्तक्षेप नहीं किया है। तीसरी बात, भारत अपने दुश्मनों और आतंकियों के प्रति अगर कड़ाई बरत रहा है, तो क्या गलत है? अमेरिका हो या चीन या रूस या इजरायल, ये ऐसे देश हैं, जो अपने सामान्य आलोचकों को भी मारने के लिए न जाने कितनी बार अपने देश की सीमा, मर्यादा लांघ जाते हैं। चीन जब कनाडा में अपने आलोचकों को मार रहा था, तब तो जस्टिन ट्रूडो ने संसद में बयान नहीं दिया था। जब कनाडा में समाजसेवी करीमा बलोच को मारा गया, तब भी ट्रूडो खामोश रहे, पर अब बिना सुबूत भारत के खिलाफ बोलकर अपनी सियासी कमजोरी और अपर्याप्त समझदारी ही उजागर कर रहे हैं। आज आतंकियों और अलगाववादियों के खिलाफ भारत के कड़े रुख का कोई विकल्प नहीं है। दुनिया की तमाम जिम्मेदार शक्तियों को समझ लेना चाहिए कि अतीत में एकाधिक बार बंट चुका भारत अब अपनी संप्रभुता से कोई समझौता नहीं कर सकता। हम सभ्यता, मानवता और वैश्विक न्याय की परिधि में अपनी संप्रभुता की रक्षा के लिए किसी भी हद तक जाएंगे और जाना ही चाहिए।

THE TIMES OF INDIA

Date:21-09-23

This Doesn’t Fit The Bill

BJP, Congress, others are all for it. But a quota for women legislators will not only not be especially empowering, it may also be counterproductive.

Sagarika Ghose

Nothing reflects all-party political calculations more than ongoing parliamentary deliberations and politicalcredit-taking over the women’s reservation bill, which cleared the Lok Sabha yesterday more than 25 years after it was originally introduced.

BJP has been in government with a single party majority for nine years but thought fit to introduce the bill only when general elections are a few months away. When Congress was in power between 2009-2014, Sonia Gandhi could not convince her allies to support the legislation. Parties led by Lalu Prasad Yadav and Mulayam Singh Yadav opposed the bill in the Lok Sabha in 2010.

Now that elections have established the growing power of the woman voter – more women (67.18%) voted in 2019 than men (67.01%) – all political parties have lined up behind a bill that is perceived to be a vote-catcher.

For BJP's top leadership, championing the bill is nod to the 2014 promise of "nari shakti" and "beti bachao beti padhao". Post-2014, BJP has made a big push for the woman voter, and in this political moment, the bill serves to shift the narrative and paper over any unhappiness and unease that might exist over the Brij Bhushan Sharan Singh issue – some of India's top sportswomen were dragged through the streets during their protests. For Congress, this is the moment to ensure that BJP does not run away with the gender justice card. SP and RJD have also recognised that without the woman voter, elections cannot be won.

In 2021, women voters powered Mamata Banerjee to victory in Bengal, given Mamata's women-centric schemes. In Bihar, Nitish Kumar's popularity among women voters helped him win at least one election convincingly. In Tamil Nadu, women had stood firmly with Jayalalithaa, one of the pioneers of women-led outreach programmes. From free bus rides to subsidised gas cylinders, women are a key target audience.

Women however cannot be taken for granted. Priyanka Gandhi Vadra brought in 40% reservation for women in tickets in UP assembly polls last year, but Congress won just two seats. Women don't always vote for women.

But the hard reality is this: politics in India remains hostile to women. Mayawati endured threats to her life in the guest house incident of 1995 and Mamata Banerjee has faced not only physical violence but terribly demeaning language from her opponents.

Today India has only a single woman chief minister, Mamata Banerjee. BJP's top Rajasthan leader Vasundhara Raje finds herself increasingly edged out of the party mainstream. Apart from Sonia Gandhi, there is no woman in the front row of Congress. BRS MLC, K Kavitha has in recent months been a prominent voice demanding the women's reservation bill. But Kavitha's own party BRS has given less than 10% seats to women for the upcoming Telangana assembly polls.

Therefore, the question: will reserving a third of seats by rotation change the male mindset?

- First, given rotational reservations, male MPs will have to give up their seats if the seat becomes a reserved one. This could mean that women proxies or the 'bahu beti' brigade take the place of the sitting MP if he happens to be male.

- Second, women who contest from reserved seats may not be able to nurture their constituencies because they will lose them in the next election. And importantly, the bill will pit women against women in reserved constituencies and reduce political contests in those seats into a battle in a 'ladies compartment'.

For sure, more women need to enter politics, but as equal mainstream players based on leadership qualities and political skills. A reserved seat system could marginalise women politicians even further. It is also important to note here that it is unclear when the new law will be implemented.

Mahatma Gandhi had said: "Those who obstruct the rise of free independent women, also obstruct the rise of free independent men." Gender justice is not about special concessions for women, but an overall democratisation of public life that makes politics safe enough for all to enter without having to endure violence or persecution from money or muscle power.

How will this happen when huge numbers of women are dropping out from the workforce? Won't similar compulsions, at least in part, apply to women entering politics, too? A great disincentive for women is that crimes against them show no signs of abating.

Also pertinent: parties play politics over crimes against women. When violence against women in Manipur became widespread public knowledge, BJP was asked why it's silent. But opposition parties keep quiet when violence against women is reported from states like Bengal. Women legislators also frequently keep quiet in these situations.

There's too much to do. That's why we need to go beyond tokenism or political gestures. A law mandating quotas for women legislators may not even be a good beginning.

THE ECONOMIC TIMES

Date:21-09-23

Census, Much More Than a Sensibility

ET Editorials

The tabling of the Women's Reservation Bill on Tuesday was a big moment. While the clause stating that the 33% quota for women will not be implemented until the next census, due in 2027, and the delimitation exercises, was a dampener, it brought back the focus on an important subject: the delayed decadal enumeration exercise. The last census was supposed to take place in 2021.

The census is crucial for many reasons. Data matters, especially in a country with a large and diverse population like India, several developmental deficits to bridge, and limited fiscal headroom. This dataset can help improve and refine administrative strategies and proper implementation of welfare schemes and social security measures that are important for the well-being of many underprivileged citizens and the country's development. GoI currently relies on 2011 census data and other surveys to implement different programmes. With a country changing at a fast clip, the 2011 data is dated.

It is not that GoI never intended to undertake the 2021 Census. It notified its intention to conduct it through a gazette notification on March 28, 2019. The entire pre-enumeration and two-phase census process takes 12-15 months. But the Covid pandemic disrupted the plans. However, as India recovered from the pandemic disruption, many stalled projects were restarted. Even the Kumbh Mela and several assembly elections, preceded by crowded poll rallies, were held on schedule. But, for some reason, GoI's census operations did not move much. From the first census in 1881, the exercise has never been delayed or postponed before this. It is high time that GoI explains the reasons for this delay and provides a timeline for conducting the exercise, an essential cog in development planning.

THE HINDU

Date:21-09-23

Legislating change

The Women's Reservation Bill must be implemented without delay.

Editorial

The passage of the Women's Reservation Bill in the Lok Sabha almost three decades after it was first tabled in Parliament is a welcome move that can finally shatter a political glass ceiling. With women Members of Parliament comprising only about 15% of the strength of the Lok Sabha, the gender inequality in political representation is stark and disturbing. The 128th Constitution Amendment Bill, or the Nari Shakti Vandan Adhiniyam, seeks to amend this by reserving a third of the seats in the Lok Sabha and legislative Assemblies for women. It has a 15-year sunset clause for the quota, that can be extended. Considering the fraught history of the struggle for women's reservation, and several false starts despite the Rajya Sabha passing it in 2010, it is laudatory that the first Bill to be introduced in the new Sansad Bhavan has been passed in the Lok Sabha. But its implementation will be delayed as it has been tied to two factors, delimitation and the Census, and therein lies the rub. It is unfortunate that implementation is being linked to delimitation, for the principle of having a third of seats reserved for women has nothing to do with the territorial limits of constituencies or the number of Assembly or Lok Sabha constituencies in each State.

Women will thus not have access to 33% reservation in the 2024 general election. The Bill also mandates that as nearly as one-third of the seats reserved for Scheduled Castes and Scheduled Tribes will be set aside for women. The Opposition is demanding an internal quota for women of Other Backward Classes, but this should not be used as a ruse to delay implementation. In the meantime, proposals should be fine tuned to ensure that when it becomes an Act, it is not mere tokenism for women's political representation. It is a fact that local bodies are better represented, with the share of women in panchayati raj institutions well above 50% in several States. Lessons must be imbibed on how women at the grassroots level have broken all sorts of barriers, from patriarchal mindsets at home to not being taken seriously in their official duties, and made a difference. Women struggle on so many other counts: they have uneven access to health, nutrition and education, there is a lack of safe places, women are also falling out of the workforce — among the G-20 countries, India's female labour force participation is the lowest at 24%. India, which gave women voting rights at the very outset, should not falter when it comes to ensuring better political representation for women. For growth, and instituting change in key areas, women need to have their say.